परिप्रेक्ष्य
वर्ष 28, अंक 1 एवं 2, अप्रैल एवं अगस्त, 2021

भावी नागरिकों की शिक्षाः
मद्रास प्रेसीडेंसी में 1920 और 1930 के दशक में अनिवार्य शिक्षा की शुरुआत

कैट्रिऑना एलिस*

सारांश

1920 के 'मद्रास प्रारंभिक शिक्षा अधिनियम' (मद्रास एलीमेंट्री एजुकेशन एक्ट) ने मद्रास प्रेसीडेंसी के भीतर शैक्षिक प्रावधानों के पुनर्गठन का प्रयास किया। जिसके तहत स्थानीय प्राधिकारियों को, यदि वे अपने क्षेत्रों में मतदाताओं से वित्तीय मदद और समर्थन प्राप्त कर सकें तो अनिवार्य शिक्षा शुरू करने का अवसर दिया गया। यह आलेख मद्रास प्रारंभिक शिक्षा अधिनियम, 1920 के आस-पास की राजनीतिक और प्रशासनिक बहसों पर विचार करता है। विशेष रूप से, इसके पीछे के प्रेरक विचारों पर ध्यान दिया गया है; खास तौर से उन तरीकों पर, जिनसे बच्चों को भविष्य के नागरिक और शिक्षार्थियों के रूप में तैयार किया जाना था। मद्रास नगर निगम की एक केस स्टडी का उपयोग करते हुए, आलेख में इस ओर ध्यान आकर्षित किया गया है कि कैसे मुफ्त और समान शिक्षा के रूप में अनिवार्य शिक्षा के विचार को व्यवहार में लागू करते समय वित्तपोषण और प्रवर्तन (इंफोर्समेंट) पर जोर दिया गया। और कैसे इन नए प्रावधानों ने समुदायों के बीच शैक्षिक मतभेदों को मज़बूत किया। लिखते समय राजनीतिक बहसों, शैक्षिक नीतियों, नीतियों के कार्यान्वयन और स्कूली बच्चों को शैक्षिक गतिविधियों के केंद्र में रखने की आकांक्षा के साथ संतुलन बनाए रखने पर जोर दिया गया है।

* सेंटर फॉर द स्कूल हिस्ट्री ऑफ हेल्थ एंड हेल्थकेयर, यूनिवर्सिटी ऑफ स्ट्राथक्लाइड, स्कॉटलैंड catriona.ellis@strath.ac.uk (@catriona_ellis)

यहाँ दो विश्वयुद्धों के बीच के वर्षों में मद्रास प्रेसीडेंसी में अनिवार्य शिक्षा की शुरूआत पर ध्यान केंद्रित किया गया है। ऐसा करते हुए यहाँ दरअसल तमिल या मद्रास की असाधारणता का दावा नहीं है, बल्कि राजनीति में निहित अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य से दूर एक बहुत ही विशिष्ट इलाके मद्रास (अब चेन्नई) को एक केस स्टडी के रूप में लेकर यह देखना है कि प्रेसीडेंसी में या प्रांतीय स्तर पर क्या हो रहा है। यह पूरे उपमहाद्वीप के प्रतिनिधि के रूप में सिर्फ़ बंगाल या दिल्ली पर ही फोकस किए जाने, की प्रवृत्ति से अलग होने के एक व्यापक निर्णय का हिस्सा है जिसे क्रिस बेली 'प्रांतीयकृत बंगाल' (द प्रोविंसियलाइज बंगाल) कहते हैं। इसके अलावा, एक अन्य बेहद महत्वपूर्ण संदर्भ द्विशासन का है। यहाँ मेरा मतलब संवैधानिक सुधारों (1919 के) की स्पष्ट लोकतांत्रिक सीमाओं को कम करके दिखाना नहीं। बल्कि, इस बात को प्राथमिकता देना है कि सरकार में भागीदारी चुनने वाले भारतीयों ने नवीन सामाजिक न्याय और शैक्षिक सुधारों को कार्यान्वित करने के लिए उपलब्ध अवसरों का कैसे उपयोग किया। ऐसा करते हुए राज्य, परिवार व भावी नागरिक (फ्यूचर सिटिजन) के रूप में बच्चों के बीच संबंधों को कैसे पुनर्निर्मित किया। अनिवार्य शिक्षा को लागू करने के कानून या निर्णय पर भारतीयों द्वारा प्रांतीय विधायिका और नगरपालिका परिषद में चर्चा की गई थी। इसे भारतीयों के नेतृत्व और भारतीय कर्मचारियों वाले विभागों में लागू किया गया (सार्वजनिक निर्देश विभाग, डिपार्टमेंट ऑफ़ पब्लिक इंस्ट्रक्शन; शिक्षा विभाग) और इसे कक्षाओं में व्यहृत करने और बाध्यताओं को लागू करने वाले प्राधिकारी भारतीय थे। दूसरे शब्दों में, जब यह मद्रास की शिक्षा व्यवस्था में लागू हुआ, तो राज्य व्यवहारतः अपने चरित्र और कार्मिक अमले में दक्षिण भारतीय था। कई रेडिकल विचार जो उस समय पैदा हुए, उनके विपरीत, कई सामाजिक पदानुक्रम/श्रेणीबद्धताएँ बनाए रखे गए, वे इस संवैधानिक बदलाव के ही परिणाम थे। बजाय तत्कालीन औपनिवेशिक संदर्भ में तेजी से प्रभावी हो रहे राष्ट्रवादी आंदोलन के। हालांकि इस बदलाव में राष्ट्रवादी और औपनिवेशिक इन दोनों की भूमिका भी थी। कई मायनों में यह आलेख दो विश्वयुद्धों के बीच के समय के दीर्घकालिक प्रभावों को दर्शाते हुए शिक्षा नीति में आमूल-चूल परिवर्तन के एक क्षण के रूप में संविधान को विकेंद्रीकृत करने के स्टीफ़न लेग और अन्य के कामों पर आधारित है।[2]

मद्रास प्रारंभिक शिक्षा अधिनियम को नवंबर 1920 में स्वीकृति मिली। इसका प्राथमिक उद्देश्य ज़िला शैक्षिक परिषदों के रूप में स्थानीय स्तर पर एक 'केंद्रीय समन्वयन प्राधिकरण' की शुरुआत करना था, जो नियामक निकायों के रूप में काम करेंगे।[3] इनका उद्देश्य स्थानीय शैक्षिक अनुदानों को तय करने और अतिरिक्त स्थानीय कराधान वसूलने के साथ ही स्कूलों के प्रत्यक्ष पर्यवेक्षण के साथ, दस वर्षों में शैक्षिक व्यवस्थापन को दोगुना करना था। दिलचस्प है कि यह गोखले के 'अखिल भारतीय एलीमेंट्री एक्ट, 1911 (प्रारंभिक शिक्षा अधिनियम) के बजाय 'अंग्रेजी शिक्षा अधिनियम, 1902 (बालफोर अधिनियम) पर आधारित एक औपनिवेशिक अधिनियम था। जो स्पष्ट रूप से भविष्य के भारतीय शिक्षा मंत्री को, जो नयी संवैधानिक व्यवस्था के तहत 1 अप्रैल 1921 से प्रभावी होने वाले अधिनियम के आने के लिए जिम्मेदार, शर्मिंदा या अधीन करने के लिए नहीं तैयार किया गया था। शिक्षा अधिनियम के सबसे महत्वपूर्ण नवोन्मेषों में से एक अनिवार्य शिक्षा की संभावना थी, जिसे अध्याय पांच के अनुच्छेद; 44-52 में वर्णित किया गया था। अनुच्छेद; 44 के तहत यह अनिवार्यता इस उद्देश्य हेतु स्पष्ट रूप से बुलाई गई स्थानीय प्राधिकरण की बैठक में प्रस्तुत की जा सकती है और धर्म व लिंग की विशिष्ट श्रेणियों के अनुसार निर्दिष्ट की जा सकती है। महत्वपूर्ण रूप से, इसका मतलब था कि फोकस नगरपालिका, नगर परिषद के स्तर पर था, न कि प्रेसीडेंसी या अखिल भारतीय स्तर पर। सरकार की सहमति प्राप्त करने के लिए (अनुच्छेद; 45) स्थानीय बोर्ड को 'व्ययों को पूरा करने हेतु आवश्यक दरों पर' विधान सभा को 'कर लगाने की तैयारी' की घोषणा करनी थी। और मांग पूरा करने के लिए 'पर्याप्त' स्कूल स्थान उपलब्ध कराने की गारंटी देनी थी। इसका उद्देश्य स्पष्ट रूप से आधारभूत शिक्षा के ज़रिए 'क्षेत्र से निरक्षरता को दूर करना' था।[4] अधिनियम में अनुच्छेद 50 के तहत उन बच्चों को इस अनिवार्यता से छूट की अनुमति थी, जिनके आवास से एक मील के दायरे में कोई स्कूल नहीं था। उन बच्चों को भी अनिवार्यता से छूट थी जो अशक्त थे; वे बच्चे, जो घर पर शिक्षा प्राप्त कर रहे थे और 'निर्धारित अधिकारी द्वारा संतोषजनक घोषित' किए गए थे; और अंत में सबसे खास वो बच्चे जो पारिवारिक आय में योगदान करने वाले थे। उपस्थिति समितियों (खंड 51) द्वारा इसकी निगरानी की जानी थी और अंततः मजिस्ट्रेट द्वारा इस स्कूल उपस्थिति को लागू किया जाना था। इसके उल्लंघन पर माता-पिता पर 5 रुपये के जुर्माने का प्रावधान था, जो दो से अधिक

उल्लंघनों पर 50 रुपये तक हो जाता था।[5] यहाँ दो बिंदु महत्वपूर्ण हैं, पहला; राज्य का इरादा माता-पिता को अपने बच्चों को स्कूल भेजने के लिए मजबूर करने का नहीं था। एक आम सहमति थी कि काम करने वाले बच्चों के लिए छूट सहित कोई भी दंडात्मक कार्रवाई 'समझा-बुझा कर आगे बढ़ाने की होनी चाहिए'।[6] हालाँकि एक बार यह संबंध स्थापित हो जाने के बाद उनका इरादा इसे बनाए रखने और आगे बढ़ाने का था, इसलिए इसका उद्देश्य नए बच्चों को स्कूल प्रणाली में लाना नहीं था, बल्कि नामांकित विद्यार्थियों को दो साल से अधिक समय तक बनाए रखना था। दूसरा; अनिवार्यता के इस नारे (रेटोरिक) ने इस बात पर जोर देते हुए एक नए प्रस्थान बिंदु की ओर संकेत किया कि बचपन की शिक्षा के लिए आदर्श स्थान स्कूल के भीतर था और स्कूल राज्य के नियंत्रण में होना चाहिए, ताकि राज्य यह तय कर सके कि वैध शिक्षा क्या है।

1925 तक मद्रास प्रेसीडेंसी में 18 मुफस्सल नगर पालिकाओं ने अनिवार्यता की शुरुआत के दी थी, जिनमें चिंगलपुट, कांजीवरम और वेल्लोर शामिल थे।[7] हमारे विश्लेषण का आधार मद्रास नगर निगम है। जिसने 1925 से 1943 के बीच शहर में अनिवार्य शिक्षा की एक योजना चलाई जिसके अधिकांश साक्ष्य स्थानीय पार्षदों के बीच निगम कक्ष में हुई चर्चा से आए हैं।[8] शिक्षा प्रदान करने वाले अलग-अलग थे - 1924 में शहर के लगभग 35% स्कूलों का प्रबंधन सीधे निगम द्वारा किया जाता था। कुछ संख्या में स्कूलों का प्रबंधन प्रांतीय सरकार द्वारा किया जाता था, लेकिन स्कूलों की बड़ी संख्या सहायता अनुदान प्रावधान के तहत वित्तपोषित व सहायता प्राप्त एजेंसियों द्वारा संचालित थी, जिसमें मिशन और गैर-मिशन स्कूल दोनों थे। 1920 के अधिनियम के परिणामस्वरूप सभी निगम के नेतृत्व वाली ज़िला शिक्षा परिषद की व्यापक निगरानी में आ गए।[9] 1941 तक, शहर के 53% बच्चे (46,000) निगम के 140 प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षित थे।[10]

अनिवार्य शिक्षा के कारण और योजना का वैचारिक निर्धारण विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। मद्रास शहर में लड़कों और लड़कियों के लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा की योजना का प्रारूप 28 मार्च 1924 को निगम की एक विशेष बैठक में जस्टिस पार्टी की शिक्षा समिति के अध्यक्ष और 'प्रेसीडेंसी के गोखले' कहे जाने वाले टी. वरदराजुलू नायडू द्वारा पेश किया गया।[11] यह योजना 1920 के शिक्षा अधिनियम और 1921 की जनगणना के बाद अपने नागरिकों को प्रारंभिक शिक्षा प्रदान करने

के निगम के नए मान्यता प्राप्त 'कर्तव्य' के परिणामस्वरूप शुरू की गई थी, जिससे पता चला कि शहर के 'आधे पुरुष और लगभग 80-85 फ़ीसदी (फाइव-सिक्स्थ ऑफ़ फीमेल) महिलाएं' बुनियादी साक्षरता के स्तर तक भी नहीं पहुंचे थे।[12] अपने उद्घाटन भाषण में, वरदराजुलू नायडू ने तर्क दिया कि इस योजना की स्थापना 'आज की सभ्य दुनिया में सर्वस्वीकृत सिद्धांत कि किसी भी बच्चे को अज्ञानता में बढ़ने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए' को 'हमारे प्राचीन विधि निर्माताओं' जैसे हिंदू धर्मशास्त्र के सिद्धांतों और ब्रिटिश भारत के अन्य प्रांतों के उदाहरणों को मिलाकर की गई है। इसका उद्देश्य बच्चों को स्थानीय भाषा और नागरिक शिक्षा में 'तीन आर- यानी पढ़ना (रीडिंग), लिखना (राइटिंग) और अंकगणित (अर्थमेटिक) का व्यावहारिक ज्ञान' सुनिश्चित करना था, जिससे वे अधिक प्रभावी ढंग से काम कर सकें और एक वयस्क के रूप में नागरिक और राजनीतिक जीवन में जागरूपता से भाग ले सकें।[13] वरदराजुलू नायडू ने यह तर्क देते हुए कि अनिवार्य स्कूली शिक्षा महज एक 'आदर्श' नहीं, बल्कि 'आवश्यकता' है। यह 'एक राष्ट्र के रूप में (विशेष ज़ोर, मेरे द्वारा) हमारे पूरे भविष्य' को प्रभावित करेगी, 'जोर देकर' कहा कि 'पूरी सभ्य दुनिया में बच्चों की शिक्षा राज्य और स्थानीय निकायों का प्राथमिक कर्तव्य है',[14] इसका समर्थन करते हुए वकील डॉ. एस. स्वामीनाथन ने कहा कि 'तीन आर- यानी पढ़ना, लिखना और अंकगणित सीखने का अवसर' एक 'जन्मसिद्ध अधिकार' या 'प्राथमिक अधिकार' है, क्योंकि 'आज के लड़के और लड़कियां कल के नागरिक हैं'।[15]

बहस के कुछ बिंदु गौरतलब हैं। जिसमें सबसे महत्वपूर्ण यह है कि बच्चों को स्कूल भेजने के लिए उनके माता-पिताओं को 'राज़ी करने' के बजाय 'मजबूर करने' की भावना पर चिंता व्यक्त की गई थी।[16] हालांकि क्रियान्वयन की व्यावहारिकताओं पर कुछ मामूली असहमतियों को छोड़ दें, तो अनिवार्य शिक्षा की शुरुआत को मंजूरी देने में सभी राजनीतिक दलों और समूहों के प्रतिनिधियों में लगभग सहमति थी। यह अखिल भारतीय स्तर पर उस महत्वपूर्ण बहस के विपरीत है, जिसे परिमला राव पेश करती हैं।[17] इसे लेकर इतना व्यापक जनसमर्थन था कि 1930 में गंभीर वित्तीय कठिनाइयों का सामना करने के बावजूद, पार्षदों को अपने भाषणों में सभी के लिए मुफ्त सार्वभौमिक शिक्षा के प्रति अपनी प्रतिबद्धता की लगातार पुष्टि करनी पड़ी।[18] यह समर्थन एक तो इस तुलनात्मक तर्क पर आधारित था कि 'सभ्यता की धारा में' मद्रास का स्थान सुनिश्चित करने के लिए अनिवार्य शिक्षा आवश्यक थी।[19] पार्षदों ने

यह तर्क देते हुए कि; बच्चों को दी जाने वाली शिक्षा (विशेष रूप से) ब्रिटेन, जापान और फिलीपींस में दी की जाने वाली शिक्षा के समान होनी चाहिए, ताकि 'विभिन्न राष्ट्रों के बीच हमारी मातृभूमि को अपना सही स्थान प्राप्त करने में सक्षम बनाया जा सके; इस योजना में बौद्धिक विरासत और वैश्विक संदर्भ पर जोर दिया गया।[20] यह मद्रास को 'भारत के कई अन्य शहरों से आगे' एक 'अग्रदूत' (पायनियर) बनाए रखेगा।[21] स्थानीय गौरव एक महत्वपूर्ण कारक था और अनिवार्य शिक्षा को 'सभ्य दुनिया की नजर में तथा सहकारी निगमों की नजर में' मद्रास की स्थिति को मजबूत करने के लिए तैयार किया गया था।[22]

दूसरा; यह विश्वास था कि 'प्राथमिक शिक्षा हमारे नागरिक जीवन को आगे बढ़ाने के लिए आवश्यक है'[23] और 'शहर की उन्नति' के लिए महत्वपूर्ण है।[24] शिक्षा में निवेश का अभिप्रेत स्पष्ट रूप से अन्य क्षेत्रों में बजट आवश्यकताओं को कम करने और भावी नागरिकों को नागरिक समाज के मानक व्यवहारों और म्यूनिसिपल नियमों की बेहतर समझ के प्रति अनुशासित करके सार्वजनिक स्वास्थ्य और स्वच्छता उपायों, दोनों की प्रभावशीलता में वृद्धि करने का था।[25]

तीसरा; बाल अधिकारों की धारणा थी। बच्चों के लिए 'हर सभ्य बच्चे का जन्मसिद्ध अधिकार' या 'अधिकारों हेतु संघर्ष' जैसी अवधारणाओं का राजनीतिक स्पेक्ट्रम की बहसों में अक्सर ही उल्लेख होता था।[26] इससे पता चलता है कि कैसे ये मध्यवर्गीय शिक्षित पार्षद बौद्धिक विनिमय के अंतरराष्ट्रीय नेटवर्क से जुड़े थे और 1924 में बाल अधिकारों की घोषणा समेत जेनेवा एवं राष्ट्र संघ में उभरते बाल अधिकार विमर्शों के बारे में बेहद जागरूक थे। कई पार्षद वैश्विक शिक्षणशास्त्रीय नेटवर्कों से जुड़े थे, जैसे नई शिक्षा आंदोलन (न्यू एजुकेशन मूवमेंट), जिसने कक्षाओं में शिक्षणशास्त्र संबंधी प्रगतिशील दृष्टिकोणों को प्रोत्साहित किया। इसके अलावा, अन्य भी बच्चों की सुरक्षा को लेकर चल रही चर्चाओं, खासकर मंदिर वेश्यावृत्ति की देवदासी प्रथा को समाप्त करने और वेश्यावृत्ति के लिए लड़कियों और महिलाओं के अनैतिक व्यापार के दमन अभियान में शामिल थे। मद्रास शहर में अनिवार्य शिक्षा के पक्ष की कई आवाजें, जैसे पार्षद मुथुलक्ष्मी रेड्डी भी इन अन्य अभियानों में शामिल हुईं। बच्चों के अपरिहार्य एवं सार्वभौमिक अधिकारों की अवधारणा को प्रसारित करने की इच्छा और क्षमता, सुधार के माध्यम से आगे बढ़ाने का एक महत्वपूर्ण पहलू बन गयी।

अंततः अनिवार्य शिक्षा का इस आधार पर समर्थन किया गया कि 'आज के लड़के-लड़कियां कल के नागरिक हैं', जिन्हें 'देखभाल के लिए हमारे सुपुर्द किया गया है'।[27] इस तरह के मुहावरे (रिटॉरिक) 1924 की बहस में पेश किये गये थे, हालांकि 1935 के बाद यह प्रतिष्ठित हुआ, जो उसी वर्ष आए भारत सरकार अधिनियम के साथ मताधिकार के विस्तार को दर्शाता है। इस बात को लगातार दोहराया गया कि निगम (कार्पोरेशन) 'आज के बच्चों के मस्तिष्कों को शिक्षित करके उन्हें कल का नागरिक बनाने'[28] तथा 'भावी राष्ट्र का निर्माण करने वाले स्वाभिमानी नागरिक'[29] पैदा करने के लिए जिम्मेदार हैं। यह प्रत्यक्ष रूप से लोकतांत्रिक सहभागिता से जुड़ा था- 'वे शहर के भावी मतदाता हैं। हमें उन्हें इस तरह से शिक्षित करना चाहिए कि वे बड़े होकर मताधिकार का प्रयोग ठीक से कर सकें।'[30]

नागरिकता पर इस फोकस का उद्देश्य स्कूली शिक्षा के विषयों पर व्यावहारिक प्रभाव डालना था। इसे कक्षाओं में बढ़ावा दिया जाना था, उदाहरण के लिए 1936 में एक प्रस्ताव पारित किया गया था कि 'हमारे भावी नागरिकों' के 'नैतिक उत्थान और मानसिक विकास' को प्रोत्साहित करने के लिए सभी शैक्षणिक संस्थानों में 'एक ध्यानाकर्षक स्थान पर' गांधी का चित्र (पोर्ट्रेट) टांगा जाए।[31] इसे पूरे सदन में विशेष रूप से समर्थन मिला, क्योंकि यह 'बढ़ते बच्चों में देशभक्ति एवं अन्य नैतिक गुणों का विकास करेगा। इससे वे लोकतांत्रिक संस्थानों की कार्यप्रणाली को समर्थ और नागरिक शासन को सुविधाजनक बनाते हुए मूल्यवान नागरिक बनेंगे तथा देश के स्थान एवं प्रतिष्ठा को बढ़ाएंगे'।[32] यह पूरी तरह से स्पष्ट नहीं है कि उन्होंने कैसे सोचा कि गांधी का एक चित्र (पोर्ट्रेट) यह सब करने के लिए था, लेकिन इससे शैक्षिक उद्देश्यों और नागरिकता की उस विवादित प्रकृति का पता चलता है, जिसमें भावी राष्ट्र-राज्य से संबंधित विचार और वैयक्तिक अधिकारों एवं उत्तरदायित्वों के विचार, दोनों शामिल थे। अच्छी नागरिकता मुख्यतः आबादी के लिए बुनियादी साक्षरता और संख्यात्मकता सुनिश्चित करके प्राप्त की जानी थी, फलस्वरूप सुशासन का आधार यह था कि साक्षर नागरिकों में सरकारी दिशा-निर्देशों को समझने और उनका पालन करने की अधिक संभावना थी। परंतु, निगम की पाठ्य-पुस्तकों का उद्देश्य इससे आगे जाना और 'राष्ट्रवाद, देशभक्ति, पुरुषत्व एवं स्त्रित्व' की समुचित सामाजिक स्थिति में अनुशासित करते हुए बच्चों में उन आदर्शों को 'आत्मसात' कराना था, जो उन्हें 'उपयुक्त, ईमानदार और अच्छा नागरिक' बनने में 'समर्थ' बनाएँ।[33] इसने बच्चे की

बौद्धिक नमनीयता (प्लास्टीसिटी) और शिक्षकों के अधिकार के प्रति आदर पर जोर दिया, जिसने उन्हें व्यवहार के उपयुक्त प्रतिमानों में कहीं अधिक आसानी से ढाला। इसने राष्ट्रवादी आंदोलन के भीतर पुरुषत्व और स्त्रित्व की प्रकृति और बाधाओं पर व्यापक बहस को भी प्रतिबिंबित किया।[34]

1937 में एक मानकीकृत नागरिकता पाठ्यक्रम की शुरुआत को लेकर हुई चर्चा ने नगर पार्षदों के मन में नागरिकता, शिक्षा की केंद्रीयता और बच्चों को मूल्यों व निष्ठाओं की शिक्षा देने से जुड़ी व्यावहारिक जटिलताओं पर प्रकाश डाला। श्रीमती अम्मू स्वामीनाथन द्वारा, इस सुझाव का विरोध किया गया जो उस समय शिक्षा समिति की नेता थीं। उन्होंने कहा कि पाठ्य-पुस्तकों को पूरे शहर में मानकीकृत नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि शिक्षकों और विद्यार्थियों के हितों को बनाए रखते हुए हर तीन साल में नया किया जाना चाहिए।[35] उनके शब्दों में, पाठ्य-पुस्तकों को 'गरीब बच्चों के दृष्टिकोण से, बच्चों के भावी नागरिक बनने के दृष्टिकोण से और बच्चों के लिए शिक्षा को रोचक बनाने के दृष्टिकोण से' लिखा जाना चाहिए।[36] यह उद्धरण विशेष रूप से दिलचस्प है, क्योंकि श्रीमती अम्मू स्वामीनाथन यह मान रही हैं कि वयस्क होने की प्रक्रिया में बच्चे भावी नागरिक हैं, लेकिन वह इस बात पर भी गौर कर रही हैं कि बच्चे की सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियां शैक्षिक अवसरों को प्रभावित करती हैं और शिक्षा को उनके लिए और अधिक प्रासंगिक किये जाने की आवश्यकता है। इसके अलावा, उन्हें शिक्षा की विषय-वस्तुओं के साथ बच्चों के सक्रिय जुड़ाव की भी समझ है, जो एक शिक्षार्थी के साथ-ही-साथ एक विषय (ऑब्जेक्ट), जिस पर कार्य किया जाना है, के रूप में बच्चे को मान्यता देता है। यह शिक्षाशास्त्रीय दृष्टि से एक उल्लेखनीय विकास है।

संक्षेप में कहें तो अनिवार्य शिक्षा की शुरूआत को आगे बढ़ाना, अधिकारों का एक विमर्श था और आधुनिक राज्य का कर्तव्य था कि वह राष्ट्रीय विकास के संदर्भ में बच्चों के लिए अवसर उपलब्ध कराए, क्योंकि बच्चा इस आधुनिक राज्य का भावी वयस्क था। शिक्षा को सार्वभौमिक, अनिवार्य, मुफ्त और समान होना था और इसने स्कूल में बच्चों के एक नए मानक चरित्र-चित्रण में योगदान दिया। साथ ही इसका उपयोग भारतीय राज्य अभिकर्ताओं (एक्टर्स) और स्थानीय नागरिक समाज की प्रगतिशील आधुनिकता को प्रदर्शित करने के लिए किया गया, जिन्होंने इसका समर्थन किया और इसने भारतीय हीनता की औपनिवेशिक धारणाओं का मुकाबला करने के लिए एक स्थान प्रदान किया।

यद्यपि बच्चों का यह विचार अलग पड़ताल का विषय है, किंतु अनिवार्य शिक्षा की अवधारणा सार्वभौमिक बच्चे के इस विचार पर आधारित थी कि स्कूली उम्र के सभी बच्चों की शैक्षणिक संस्थानों तक समान पहुंच होनी चाहिए; कि बच्चे वयस्कों से अलग थे; और यह कि आधुनिक बचपन और आधुनिक बच्चों के लिए आदर्श स्थान स्कूल था। यह स्पष्ट रूप से उन दूसरे कौशलों का अवमूल्यन करना था, जिन्हें बच्चा सीखने के अन्य स्थानों पर प्राप्त कर सकता है। परंतु बच्चा क्या है? विवरणों पर चर्चा में था कि व्यापक अवधारणाओं का परीक्षण किया गया था। विधान परिषद में शिक्षा अधिनियम के इर्द-गिर्द 'स्कूली-आयु' की संख्यात्मक सीमाओं को लेकर व्यापक वाद-विवाद हुआ, वाद-विवाद इतना ज्यादा बढ़ गया कि मध्यस्थ के रूप में अंग्रेजों को निर्णय का अंतिम अधिकार दे दिया गया। यानी दूसरे शब्दों में, स्कूली बच्चे को 'ऐसी उम्र से परिभाषित किया गया, जो किसी खास समुदाय के किसी विशेष स्थानीय क्षेत्र में किसी भी लिंग के बच्चों के संबंध में गवर्नर-इन-काउंसिल (परिषद में ब्रिटिश गवर्नर) द्वारा निर्धारित की गई हो।'[37] उदाहरण के लिए, मद्रास शहर में छह से ग्यारह वर्ष की आयु के लड़कों के लिए, आठ से तेरह साल के मुस्लिम लड़कों के लिए और पांच से दस साल की लड़कियों के लिए यह अनिवार्यता लागू की गई।[38] यह नियम इस धारणा पर आधारित थी कि बच्चे या उनके माता-पिता, अपनी खुद की उम्र सही-सही बता सकते हैं, लेकिन जन्म पंजीकरण की कमी को देखते हुए यह एक मुश्किल बात थी।[39] इससे इसे लागू करना कठिन हो गया, लेकिन सारतः मद्रास शहर के तमिल भाषी, हिंदू, पुरुष, सक्षम, सम्पन्न और मध्यम अथवा उच्च जाति के 'सार्वभौमिक' या 'सामान्य' बच्चे के एक आदर्श प्रतिरूप के खिलाफ स्थापित किए गए 'शैक्षिक समुदायों' के गठन में भी योगदान दिया।

व्यवहारतः, बच्चे न केवल उम्र के एक अस्थायी दायरे में बंधे होकर 'बच्चे' थे, बल्कि अंतरसामुदायिक सामाजिक पहचानों की एक व्यापक श्रृंखला द्वारा भी विभेदित थे और विभेदित हैं। इसने शिक्षा तक उनकी पहुंच और शैक्षिक प्रावधानों को प्रभावित किया। लिंगभेद ने भी स्कूली शिक्षा तक बच्चों की पहुंच को प्रभावित किया और कांजीवरम या सैदापेट जैसे अधिकांश परिषदीय क्षेत्रों में, जहाँ अनिवार्य शिक्षा शुरू की गई थी, वहाँ लड़कियों के लिए कोई प्रावधान नहीं था। वास्तव में इरोड नगर पालिका परिषद ने जब 1922 में अनिवार्य शिक्षा की शुरुआत की, तो उसने सरकार से अतिरिक्त वित्तीय सहायता का अनुरोध किया, जो शिक्षा-कर का

125% था। इसकी वजह यह थी कि पूरी प्रेसीडेंसी में यह इकलौती नगर पालिका (म्युनिसिपल) थी, जो लड़के और लड़कियों दोनों के लिए अनिवार्य शिक्षा की वकालत करती थी, हालांकि अभी भी मुस्लिम लड़कियों के लिए इसमें विशेष छूट थी।[40] इरोड नगर पालिका परिषद के अध्यक्ष का दावा यह प्रदर्शित करता है कि इरोड 'अधिकांश नगर पालिकाओं की तुलना में पहले से ही शैक्षिक रूप से उन्नत थी' और प्रस्तावित वित्तीय बोझ 'नगर पालिका द्वारा उठाए जाने वाले इस असाधारण कदम की तुलना में कहीं हल्का था।'[41] महत्वपूर्ण यह भी था कि इस बात के प्रमाण के बावजूद कि बालिका विद्यालयों की तुलना में मिश्रित स्कूलों में पढ़ने वाली लड़कियों की संख्या लगातार अधिक रही है।[42] लड़कियों की शिक्षा को लेकर बालिका विद्यालयों और एक खास महिला विषयक पाठ्यक्रम के संदर्भ में ही चर्चा की जाती थी। भाषायी अवरोध भी थे। तमिल भाषियों की तुलना में तेलुगू भाषियों के लिए (मद्रास शहर में स्कूली उम्र की लगभग 30% आबादी होने के बावजूद) कहीं कम अवसर थे, इसलिए शिक्षा अनिवार्य हो सकती थी, लेकिन इसमें शामिल होने के लिए कुछ ही तेलुगू स्कूल थे, और बहुत ही कम तेलुगू भाषा के शिक्षक।[43] 1930 के दशक में स्थानीय भाषा में शिक्षण पर जोर दिए जाने के विचार को मजबूती तब मिली, जब कांग्रेस पार्टी ने माध्यमिक विद्यालयों में हिंदी शुरू करने का प्रयास किया। इसके विरोध में तमिल भाषा प्रचारक टी.एस. नटराज पिल्लई ने तर्क दिया कि बच्चों के लिए एक ऐसी भाषा को पेश करना, जिससे उनका कोई भावनात्मक या व्यावहारिक संबंध नहीं है, 'स्पष्ट आपराधिक कृत्य' था। यह तर्क द्रविड़ राष्ट्रवादी आंदोलन के गठन में एक महत्वपूर्ण आधार बना और तमिल भाषा का संरक्षण प्रेसीडेंसी में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की धुरी बन गया।[44] विकलांग बच्चों के लिए छूट सहित सामान्यतः बच्चों को हर तरह से समर्थांग (सक्षम, एबल बॉडीज) भी माना जाता था और निश्चित रूप से, किसी भी प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने में अशक्त बच्चों के लिए कोई प्रावधान नहीं था।

प्रेसीडेंसी के भीतर मुसलमानों को एक अलग शैक्षिक समुदाय माना जाता था, क्योंकि मदरसों में या घरों पर धार्मिक शिक्षा और कुरान में प्रशिक्षण पर उनका ज्यादा ध्यान था, जिसका अर्थ था कि वे अपनी धर्मनिरपेक्ष शिक्षा शुरू करने से पहले प्रायः अधिक उम्र के होते थे। यह उस व्यापक औपनिवेशिक धारणा से जुड़ता था कि मुसलमान समुदाय के 'शैक्षिक पिछड़ेपन' के कारण अलग शैक्षिक प्रावधान की आवश्यकता है।[45] अलग (एक्सक्लूसिव) मुस्लिम शिक्षा पर इस फोकस ने मुस्लिम

प्रतिनिधियों के उन हस्तक्षेपों (या आग्रहों?) को नज़रअंदाज़ किया कि मद्रास के संदर्भ में एक निर्विवाद (या अखंडित?) मुस्लिम समुदाय जैसी कोई चीज नहीं थी। यहाँ धर्म कई साझा पहचानों में से केवल एक पहचान था, क्योंकि विभिन्न सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमियों से आने वाले मुसलमान तमिल, तेलुगु व उर्दू बोलने वाले कोई भी हो सकते थे।[46] मुस्लिम लड़कियों को एक विशिष्ट उपश्रेणी के रूप में माना गया था, जिन्हें प्रायः औपचारिक रूप से अनिवार्यता में छूट थी। इस दौरान, मद्रास शहर में पार्षदों द्वारा किसी अन्य स्कूली समूह की तुलना में मुस्लिम लड़कियों पर हुई चर्चा में कहीं अधिक समय दिया गया, मगर उनकी शिक्षा को लेकर नहीं, बल्कि उनके स्कूल तक आने-जाने को लेकर कि क्या यह कदम बैलगाड़ियों के खर्च और अभिभावकों हेतु गोशा/पर्दा पाबंदियों को निबाह सकने में उचित होगा।[47]

अंत में, निम्न जाति और दलित शिक्षा को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से की गई कई पहलों सहित प्रेसीडेंसी स्तर पर जातीय प्रावधानों की गहन छानबीन की गई। 'सरकार की घोषित नीति थी कि जाति के आधार पर किसी भी बच्चे को सरकारी शिक्षण संस्थानों में प्रवेश से मना नहीं किया जाना चाहिए।'[48] इन ज्यादातर पहलों ने प्रायः श्रम विभाग द्वारा संचालित अलग-अलग संस्थानों को प्रोत्साहित किया, जिसकी मद्रास प्रेसीडेंसी में दलित समुदाय के उत्थान हेतु खास जिम्मेदारी थी।[49] लेकिन नगर पालिका क्षेत्र, यानी मद्रास शहर में, जहाँ लिंग, धर्म और भाषा के आधार पर पृथक शिक्षा को पूर्ण मान्यता प्राप्त थी, वहाँ सभी दलों- भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, जस्टिस पार्टी व बाद में आत्मसम्मान आंदोलन- के पार्षदों ने अस्पृश्यता के शैक्षिक निहितार्थों और दलितों के लिए अलग प्रावधान पर चर्चा करने से पूरी तरह इनकार कर दिया। यह इस विश्वास पर आधारित था कि 'आदि-द्रविड़ लड़कों को किसी भी स्कूल में प्रवेश की अनुमति है' और उन्हें अलग-अलग जाति संस्थानों से लाभ नहीं होगा।[50] मुख्यधारा के हिंदू स्कूलों में निम्न जातियों को शामिल करना मद्रास दृष्टिकोण की एक उल्लेखनीय विशेषता थी और इसमें यह डर भी शामिल था कि अगर स्कूलों ने जाति के आधार पर अलगाव को जारी रखा, तो अनुदान राशि उनसे वापस ले ली जाएगी।

इसके विपरीत, अनिवार्य शिक्षा के संबंध में मद्रास शहर में उभरी एक विशेष श्रेणी 'गरीब बच्चों' की थी। गरीब बच्चों के प्रति नगर पालिका (कारपोरेशन/निगम) की इकलौती जिम्मेदारी में एक निश्चित अवस्थिति लेते हुए पार्षदों ने इस बात पर सहमति जताई कि नगर पालिका द्वारा संचालित स्कूल सिर्फ़ 'गरीबों के लिए' होने

चाहिए।[51] शारदा बालगोपालन के शब्दों में; गरीब बच्चा राज्य के शैक्षिक कल्याण का खास लक्ष्य बन गया।[52] इसे झुग्गी बस्तियों के लिए आवास सुधार और स्नान फव्वारों सहित व्यापक पितृ-सुलभ सुधार योजनाओं के संदर्भ में देखा जा सकता है, लेकिन गरीब बच्चों पर इतना जोर आधुनिक राष्ट्र-राज्य के नागरिकों और भावी अंशदाताओं के रूप में उनके उभरते मूल्य से जुड़ा हुआ लगता है।[53] मद्रास नगर निगम अनिवार्य क्षेत्र में सभी बच्चों के लिए *मुफ्त शिक्षा* हेतु प्रतिबद्ध था, ताकि उन्हें 'शिक्षा के लिए सुविधाओं और अवसरों के संबंध में समानता के पायदान पर रखा जाए'।[54] यह कम-से-कम अपने दावे में बहुत स्पष्ट और आधुनिक लगता है, हालांकि व्यवहार में दिखायी पड़ता है कि 'गरीब बच्चों' के लिए मुफ्त शिक्षा प्रदान करने की जिम्मेदारी कठोरता से अच्छी-बुरी गुणवत्ता के एक भवन और एक शिक्षक के प्रावधान के प्रति परिभाषित की गई थी। इन निर्दिष्ट 'गरीबों' के लिए मुफ्त किताबें या कपड़े उपलब्ध कराने के अन्य प्रस्ताव सफल नहीं रहे, यहाँ तक कि तब भी, जब कुछ शिक्षकों ने बिना इन ज़रूरी सामानों के विद्यार्थियों को स्वीकार करने से इनकार कर दिया।[55] 1937 में मजदूर नेता सी. बासुदेव ने कहा कि 35,000 निगम स्कूलों के 90% विद्यार्थी 'शहर के सबसे गरीब घरों के बच्चे' थे और अनुमानित 95% माता-पिता 'उन्हें अच्छे कपड़े और ज़रूरी किताबें व स्लेट दिला सकने' का खर्च वहन नहीं कर सकते थे, जिससे उनकी उपस्थिति को बचाया जा सके।[56] कई बहसों में यह माना गया कि इन 'छोटे बच्चों' के 'चेहरों पर गरीबी... लिखी होती थी' और उन्हें न्यूनतम कपड़ों' के लिए भी संघर्ष करना पड़ता था, जो उनके अमीर सहपाठियों के लिए परेशानी की बात थी।[57] पर्याप्त संसाधनों, खास तौर से पाठ्य-पुस्तकों, की कमी ने कक्षा में असमानता को बढ़ाया और गृहकार्य को प्रभावित किया, जिसे 'अनियमित उपस्थिति का सबसे प्रभावी कारण' माना गया।[58] इन कठिनाइयों को करीब-करीब वार्षिक आधार पर उठाया गया था, लेकिन इन्हें लगातार अनदेखा किया गया। दूसरी ओर, यह मान्यता थी कि राज्य को शिक्षा और शिक्षा की निरंतरता बनाए रखने के लिए बच्चों को आवश्यक बुनियादी पोषण प्रदान करना चाहिए, और गरीब बच्चों के लिए मुफ्त स्कूली भोजन के प्रावधान में मद्रास शहर सबसे आगे था।[59]

निगम के स्कूलों द्वारा अनुकृत पाठ्यक्रम ने बुनियादी साक्षरता और संख्यात्मकता को प्राथमिकता दी, जिसे 'सभी बच्चों के लिए' आवश्यक माना गया, लेकिन विशेष रूप सेः ताकि 'मजदूर वर्ग और छोटा-मोटा काम करने वाले अपने जीवन के किसी

भी क्षेत्र में कहीं अधिक बुद्धिमत्ता और कहीं अधिक उत्साह के साथ ये काम कर सकें'।[60]

1925 में इसे एक प्रस्ताव में दोहराया गया था कि 'तीन आर के अलावा आगे के अध्ययन के पाठ्यक्रम को शहर के सभी स्कूलों में नहीं रखा जाना चाहिए, *लेकिन यह स्कूल आने वाले बच्चों की कक्षा के अनुसार अलग-अलग होता है*'।[61] जब अन्य विषयों को पढ़ाया गया, जो बड़े पैमाने पर व्यावसायिक थे, जिनका उद्देश्य आय का एक वैकल्पिक स्रोत प्रदान करना था। अनिवार्य शिक्षा की स्थापना के पंद्रह साल बाद, 1939 में, पार्षदों ने यह घोषित करना जारी रखा कि वे 'गरीबों के प्रतिनिधि' थे, और अभी भी इस आदर्श के लिए प्रतिबद्ध थे कि सभी बच्चों को मुफ्त शिक्षा उपलब्ध होनी चाहिए और यह निगम की जिम्मेदारी थी कि वह इसे गरीबों के लिए उपलब्ध कराए।[62] हालांकि, अधिकांश पार्षदों के लिए गरीबों हेतु मुफ्त शिक्षा का मतलब उस बुनियादी शिक्षा से था, जो भावी श्रमिकों को कहीं अधिक अनुशासित और लचीले कार्यबल के रूप में प्रभावी ढंग से प्रशिक्षित करे। और सामाजिक प्रगति हेतु कौशल या अवसर प्रदान करने वाली मानक शिक्षा प्रदान करने को लेकर उनकी ऐसी कोई प्रतिबद्धता नहीं थी। ऐसा लग रहा था कि शिक्षा, वर्ग पदानुक्रमों (वर्ग आधारित ऊंच-नीच) को चुनौती देने के बजाय उसे मजबूत करने के लिए बनाई गई थी।[63]

गरीब बच्चों के लिए अकादमिक या आधुनिक शिक्षा प्राप्त करने के कुछ अवसर थे, लेकिन ये बहुत सीमित थे। विशेष प्रतिभाशाली बच्चे परीक्षा ग्रेड के आधार पर अतिरिक्त छात्रवृत्तियां अर्जित कर सकते थे। छात्रवृत्ति प्राप्त करने के लिए बच्चे को 'डिवीजनल काउंसलर या मानद मजिस्ट्रेट द्वारा प्रमाणित गरीब' होना पड़ता था, जो एक अपमानजनक और व्यावहारिक रूप से कठिन कार्य था।[64] और जब 1936, 1937 और 1938 में प्रस्तावों में यह सुझाव दिया गया कि 'मजदूरों के बच्चों' के लिए उनकी स्कूली शिक्षा को पाँचवीं और छठवीं तक बढ़ा सकने के लिए निगम वित्तीय सहायता प्रदान कर सकता है, तो ये कोशिशें इस आधार पर असफल हो गईं कि जहाँ 15,000 गरीब बच्चों को कोई स्कूली शिक्षा नहीं मिल रही है, वहाँ ऐसा करना संसाधनों की बरबादी होगी।[65] 1939 में शिक्षा समिति ने न्यूनतम शुल्क की कीमत पर कक्षा-6 (12 आना प्रति माह), कक्षा-7 (14 आना प्रति माह) और कक्षा-8 (1 रुपये प्रति माह) के लिए शिक्षा अवधि के विस्तार का प्रस्ताव रखा। इसने मौन रूप से इस धारणा का समर्थन किया कि बच्चों को बुनियादी साक्षरता और संख्यात्मकता सिखाने के लिए

पांच साल की स्कूली शिक्षा पर्याप्त थी, और इसलिए शिक्षा के इसके आगे के वर्षों को 'अनिवार्य' या 'मुफ्त' के रूप में नहीं माना जा सकता। साथ ही इसने गरीब परिवारों के उन होशियार बच्चों को, जो सब्सिडी वाली शिक्षा जारी रखना चाहते थे, कम कीमत का एक विकल्प प्रदान किया। इसके समर्थन में श्रम प्रतिनिधि सी. बासुदेव ने कहाः

मजदूर वर्गों में शिक्षा की भूख है। वे जिस स्थिति में हैं, वहीं बने रहने से इनकार करते हैं। वे अपने बच्चों को जीवन की उसी दयनीय स्थिति में बंधे रहने देने से इनकार करते हैं, जिसमें उनके जन्म ने उन्हें सीमित कर दिया है। वे चाहते हैं कि उनके बच्चे कम से कम क्लर्क बनें, मजदूर बनकर ही न रहें। अगर हम यहाँ वास्तव में मजदूर वर्ग के उत्थान हेतु काम करने के लिए हैं, तो यह देखना हमारा कर्तव्य है कि मानवीय महत्वाकांक्षाओं की प्राप्ति में जन्म कोई बाधा न बने।[66]

हालाँकि यह दलील बहुमत के लिए मृत्यु के निष्ठुर कानों में पड़ने जैसी थी। उच्च कक्षाओं में शिक्षा पर सब्सिडी देने के प्रस्ताव का 'एक आपराधिक मूर्खतापूर्ण कार्य' के रूप में विरोध किया गया, क्योंकि धन की कमी का मतलब था कि अगर एक तरफ कुछ गरीब बच्चे आगे बढ़ेंगे, तो यह दूसरी तरफ कई 'अन्य बच्चों को प्राथमिक शिक्षा से भी वंचित' कर देगा।[67] दूसरे शब्दों में, चूंकि कुछ गरीब बच्चों ने अच्छा प्रदर्शन किया, इसलिए दूसरे बच्चों को इसका खामियाजा भुगतना पड़ेगा।

शिक्षा अनिवार्य हो सकती है, लेकिन शिक्षा तक *पहुंच* ने मौजूदा सामाजिक पदानुक्रमों एवं सामाजिक पहचानों और भावी नागरिकों के जीवन पर सरकारी नियंत्रण के विस्तार को चुनौती देने के बजाय मजबूती दी है, जबकि न केवल गरीबी, बल्कि लिंग, धर्म और जाति भी शैक्षिक प्रावधान की गुणवत्ता और विस्तार में प्रमुख निर्णायक कारक बने रहे।

मद्रास विधान परिषद (प्रेसीडेंसी स्तर) के भीतर यह दृढ़ता से महसूस किया गया कि साक्षरता के विस्तार हेतु अनिवार्य शिक्षा आवश्यक थी, लेकिन यह भी कि 'सभी देशों में जहाँ कहीं भी आप किसी व्यक्ति को अपने लड़के को स्कूल भेजने के लिए बाध्य करते हैं, तो आप उसे स्कूल की फ़ीस भरने के लिए नहीं कह सकते'। दूसरे शब्दों में कहें तो अगर शिक्षा अनिवार्य थी, तो वह निःशुल्क भी होनी चाहिए।[68] अनुच्छेद 47 कहता है कि अनिवार्य शिक्षा लागू करने वाले किसी नगरपालिका या स्थानीय प्राधिकार क्षेत्र के भीतर सभी संस्थानों में कम से कम कागज पर सबकी

समान पहुँच सुनिश्चित करने के लिए हर तरह की फ़ीस को समाप्त करना होगा।[69] समस्या यह थी कि प्रेसीडेंसी में प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में निजी सहायता प्राप्त संस्थानों का वर्चस्व था, जो 1932 में लगभग 60% (15% मिशन और 44% गैर-मिशन)[70] थे। ये संस्थान अपने सरकारी अनुदान के अलावा लगभग हमेशा ही छात्रों से फ़ीस लेते थे।[71] यदि समान पहुंच के लिए फ़ीस को समाप्त कर दिया जाता, तो इन संस्थानों को बहुत तरह के अभावों का सामना करना पड़ता। इसलिए मद्रास शैक्षिक नियमावली में फ़ीस की भरपाई हेतु मुआवजे की एक बुनियादी दर तय की गई, जिसे स्थानीय प्राधिकारियों के विवेक पर लागू होना था।[72]

यद्यपि कागज़ों पर मुफ्त शिक्षा का सुझाव उचित प्रतीत होता था, लेकिन इसके व्यावहारिक प्रभावों के बारे में कम चर्चा थी। यह और स्पष्ट हुआ, जब 1925 में मद्रास शहर ने अनिवार्य शिक्षा को लागू करना शुरू किया।[73] वित्तीय बाधाओं के चलते प्रारम्भ में अनिवार्य शिक्षा को सात वर्षों में धीरे-धीरे लागू किया जाना था,[74] जिसमें 1925-26 में तीन डिवीजनों से शुरू करते हुए 1932 तक धीरे-धीरे प्रति वर्ष लगभग तीन डिवीजनों को बढ़ाया जाना था। योजना में 8,560 लड़कों और 12,250 लड़कियों (खास तौर से गैर-मुस्लिम) सहित 20,810 बच्चों के लिए प्रावधान था।[75] इसे एक अलग प्राथमिक शिक्षा कोष (एलीमेंट्री एजुकेशन फंड; ईईएफ) के माध्यम से वित्तपोषित किया जाना था, जिसे अप्रैल 1925 से पूरी नगर पालिका में संपत्ति के वार्षिक मूल्य पर 0.25% शिक्षा कर लगा कर संचित किया जाना शुरू किया गया।[76] इसके बाद निगम आम राजस्व से 24 लाख रुपये की राशि का योगदान करता, जिसके साथ शिक्षा अधिनियम 1920 की धारा 48 के तहत मद्रास सरकार (एमएलसी) को भी समान राशि का योगदान करना था। इसके बदले में, संपत्ति कर को 1.5% से कम किया जाना था, जिसका मतलब था कि शिक्षा के लिए झुग्गी-बस्तियों के सुधार और अन्य सामाजिक निवेशों के धन का परित्याग किया जाना था।[77] हालांकि असहमति की कुछ आवाजें थीं, लेकिन अधिकांश पार्षद इस बात से सहमत थे कि 'निगम को शिक्षा पर कितनी भी राशि खर्च करने के लिए तैयार रहना चाहिए'।[78]

समस्या यह थी कि मद्रास नगर निगम अनिवार्य शिक्षा की चरणबद्ध शुरुआत की सुविधा प्रदान करने के लिए सहायता प्राप्त स्कूलों पर निर्भर था और इसलिए वह इन स्कूलों को फ़ीस से प्राप्त होने वाली आय की क्षतिपूर्ति के प्रति उत्तरदायी

बन गया। इस बात पर सहमति बनी कि इन सहायता प्राप्त स्कूलों का प्रत्यक्ष प्रबंधन ग्रहण करने में 'कहीं अधिक नकारात्मक जोखिम' था, जबकि सार्वजनिक प्रबंधन के तहत चलने वाले निगम या प्रेसीडेंसी के शिक्षा विभाग द्वारा संचालित स्कूल व्यापक रूप से 'कम खर्चीले, लेकिन उतने ही प्रभावी' माने जाते थे।[79] इसलिए स्थानीय पार्षदों और शिक्षा विभाग द्वारा यह निर्णय लिया गया कि इन सहायता प्राप्त स्कूलों को स्कूल की फ़ीस की मौजूदा दरों के अनुरूप पूरा मुआवज़ा मिलना चाहिए, जो कि शैक्षिक विनियमों के तहत निर्धारित तथाकथित 'मूर्खतापूर्ण ढंग से कम' दर से लगभग चार या पांच गुना अधिक था।[80] यह बहुत जल्दी ही धन संकट का एक कारण बना, जब करों से जुटाया गया और अनिवार्य शिक्षा के लिए नियत किया गया लगभग सारा धन सहायता प्राप्त स्कूलों की फ़ीस क्षतिपूर्ति में ही उपयोग होने लगा।[81] इसका विनाशकारी प्रभाव पड़ा। 1931 की जनगणना में दर्ज है कि अनिवार्य क्षेत्र में 15,000 के करीब बच्चे स्कूली शिक्षा तक पहुंच के बिना थे और यदि वे स्कूल आना भी चाहते, तो इन सभी पात्र बच्चों को रखने के लिए पर्याप्त भवन नहीं थे।[82] नए भवन कार्यक्रम बुरी तरह से वित्तीय कमी के शिकार थे, जबकि मौजूदा भवन भयानक स्थिति में थे- वास्तव में निगम के पशु बाड़े तक 'कहीं ज्यादा साफ़-सुथरे' कहे जाते थे और शिक्षा समिति के अध्यक्ष ने सुझाव दिया कि कुछ स्कूल 'बाल संरक्षण सोसायटी, द्वारा जांच किए जाने योग्य थे'।[83] भवनों या शिक्षकों में सीमित निवेश किया जा सकता था, जबकि धन की स्थिति लगातार अनिश्चित बनी हुई थी।

इसके बाद विभागों और शासनिक स्तरों के बीच इस बात को लेकर व्यापक बहस हुई कि इसे कैसे हल किया जाना चाहिए। सहायता प्राप्त स्कूलों के प्रत्यक्ष प्रबंधन या उनका नगर पालिकाकरण करने (म्युन्सिपलाइजेशन) के लिए कोई राजनीतिक इच्छा नहीं थी और इसे व्यापक स्तर पर किसी भी तरह वित्तीय रूप से असंभव माना जाता था।[84] इसके बजाय धन के संकट का इस्तेमाल एक दूसरे समूह द्वारा किया गया, जो माता-पिता के चुनने के अधिकारों की पैरवी करता था और जिसका कहना था कि अमीरों को अपने बच्चों के लिए बेहतर गुणवत्ता वाली शिक्षा उपलब्ध कराने हेतु अपना पैसा खर्च करने की अनुमति दी जानी चाहिए। इसका समर्थन करने वाले पार्षदों ने तर्क दिया कि 'हमारा काम केवल यह देखना है कि शहर के बच्चे शिक्षित हों' और यदि 'माता-पिता अपने बच्चों की शिक्षा के लिए भुगतान करने को तैयार हैं' तो 'हमें क्या परवाह है, अगर वे ऐसा करते हैं, जब तक कि उनके

बच्चे बिना शिक्षा के नहीं रह जाते?'[85] यह बहस कुछ वर्षों तक चली, जब तक कि निगम ने निजी सहायता प्राप्त स्कूलों को मुआवज़ा देने से इंकार करते हुए, निजी स्कूल प्रबंधकों को अनिवार्य क्षेत्र के भीतर फ़ीस ले सकने की अनुमति देकर शिक्षा अधिनियम की शर्तों को भंग करने का फैसला नहीं किया। जिसने अंततः विधान सभा को इस मुद्दे पर पीछे हटने और कानून में संशोधन करने पर मजबूर किया।[86] शिक्षा अधिनियम में संशोधन ने शिक्षा में माता-पिता की चयन भूमिका को फिर से केंद्रीय बनाया। इस मान्यता के बावजूद कि शैक्षिक अवसरों में संपत्ति और परिवार की केंद्रीयता को पुनः उभारते हुए यह शैक्षिक मानकों में भेद पैदा करेगा और मौजूदा शैक्षिक विभाजनों को बढ़ाएगा, इसने माता-पिता को फ़ीस लेने वाले सहायता प्राप्त स्कूलों और मुफ्त निगम स्कूलों के बीच किसी एक को चुन सकने की अनुमति दी।[87] इससे पता चलता है कि वास्तविकता में लागू किए जाने के बजाय, अभिजात्यों के लिए अपनी परोपकारिता दिखाने की एक प्रतीकात्मक चेष्टा की तरह, आधुनिकता के जयघोष के रूप में अनिवार्य शिक्षा का समर्थन कहीं अधिक महत्वपूर्ण था, और इसका अर्थ था कि जब सीमित वित्तीय संसाधनों के बँटवारे को लेकर कठोर निर्णय लिए जाने थे, तो बच्चे- राज्य की भावी परिसंपत्ति होने के बावजूद महत्वपूर्ण नहीं थे।

अगर हम देखें कि कैसे सबसे गरीब माता-पिता तक के लिए भी, प्राधिकार को चुनौती देने के प्रति अनिच्छा प्रकट करते हुए अनिवार्यता को लागू किया गया था, तो माता-पिता या अभिभावकीय चयन के प्रति इस सम्मान पर गौर किया जा सकता है। ज़िला शिक्षा परिषद ने औपचारिक स्कूली शिक्षा के महत्व के बारे में 'जनमत को शिक्षित करने' और बच्चों को 'अपने माता-पिता के लिए कम से कम असुविधा' के साथ स्कूल जाने हेतु राज़ी करने की आवश्यकता को रेखांकित किया।[88] सामान्यतः निगम के स्कूल शिक्षकों द्वारा इसका कार्यान्वयन किया जाता था, जिनके लिए स्थानीय मेडिकल रजिस्ट्रार और स्कूल अधीक्षक द्वारा परिनियमित बच्चों का रजिस्टर बनाना ज़रूरी था।[89] शिक्षकों को हर शनिवार की सुबह माता-पिताओं को उनके बच्चों की प्रगति रिपोर्ट देने और 'अन्य माता-पिताओं को अपने बच्चों को स्कूल भेजने के लिए राज़ी करने' हेतु स्थानीय क्षेत्र का दौरा करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता था।[90] इस प्रकार हस्तक्षेपवादी राज्य के स्थानीय अवतार और एक नयी भारतीय आधुनिकता के प्रतीक के रूप में स्कूल शिक्षक का इस्तेमाल किया गया, जो परिवार व्यवस्था के भीतर घुसने में सक्षम था, लेकिन पारिवारिक सत्ता के लिए खतरा नहीं था।

जब शिक्षकों का समझाना-बुझाना असफल हो गया, तो स्कूलों में पहले से ही नामांकित बच्चों की उपस्थिति सुनिश्चित करने हेतु एक उपस्थिति समिति बनायी गई। इसका द्वितीयक उद्देश्य उन लोगों तक शैक्षिक व्यवस्था का विस्तार करना था, जिनका अब तक स्कूल व्यवस्था से कोई संपर्क नहीं था।[91] प्रत्येक नगरपालिका प्रभाग में पंद्रह 'स्थानीय प्रबोधित स्त्री-पुरुषों और जिम्मेदारी उठाने हेतु जनहित की भावना से प्रेरित अग्रणी व्यक्तियों' की एक उपस्थिति समिति थी। समिति के पास उन 'दोषी माता-पिता' के खिलाफ अभियोग चलाने की शक्ति थी, जो अपने बच्चों को, स्कूल भेजने से इंकार करने के बजाय, नामांकित करने के बावजूद उनकी उपस्थिति सुनिश्चित करने में लगातार विफल रहे।[92] प्रभावी रूप से इसने स्थानीय नागरिक समाज निकायों को परिवार में हस्तक्षेप करने की शक्ति प्रदान की, और उन्हें माता-पिता से मुद्दों के ज़रिए 'धीरे-धीरे' बात करने के लिए प्रोत्साहित किया गया। 1929 में निगम द्वारा तीन 'उपस्थिति अधिकारियों' को भी इस स्पष्ट समझ के साथ नियोजित किया गया कि वे स्थानीय आबादी को डराते नहीं हैं।[93] जिन परिस्थितियों में अभियोग चलाया जा सकता था, वे इतनी सीमित थीं कि ऐसा होना दुर्लभ था। पायलोर के दालान (बरामदा) स्कूल अपवाद थे, जहाँ माता-पिता पर अभियोग चलाया गया, अगर उनके बच्चे सरकारी धन प्राप्त नहीं करने वाले स्कूल में पढ़ते थे, और इसलिए मद्रास शैक्षिक विनियमों के अधीन नहीं थे।[94]

इसके अलावा, माता-पिता को अपने बच्चों को स्कूल भेजने के लिए प्रोत्साहित करने हेतु कई हस्तक्षेपकारी योजनाएं शुरू की गईं। इसमें सर्वाधिक गरीब क्षेत्रों में बच्चों को दोपहर का मुफ्त भोजन प्रदान करने की मध्याह्न भोजन योजना थी। यह योजना माता-पिता के लिए आय की कमी की क्षतिपूर्ति और कक्षा में बच्चों की बेहतर एकाग्रता के लिए उन्हें पर्याप्त पोषण प्रदान करने हेतु उठाए गए कदम के रूप में अभिकल्पित की गई थी। यह वास्तव में महत्वपूर्ण योजना थी, क्योंकि यह न केवल अपनी संकल्पना, बल्कि अपनी व्यापकता में भी बेहद मौलिक थी। 1939 तक 96 स्कूलों सहित 6,000 बच्चों ने निगम द्वारा प्रदत्त मुफ्त स्कूली भोजन प्राप्त किया, जिसमें पूरक के रूप में छाछ भी थी।[95] एक सुझाव यह भी था कि माता-पिता को आय के नुकसान के लिए सीधे क्षतिपूर्ति दी जानी चाहिए, ताकि अनिवार्यता गरीबों के 'खर्च पर' न आए। इस विचार को निगम में भी समर्थन मिला, लेकिन अपनी लागत के आधार पर यह पारित नहीं हो सका।[97] कानून में कुछ छूट भी दी गई,

जैसे कि 'बच्चे की आय' यदि 'परिवार के पालन-पोषण के लिए बिल्कुल ज़रूरी' थी, तो अंशकालिक स्कूल उपस्थिति की अनुमति दी गई।[97] दो स्पष्ट गुण इस पूरी बहस की विशेषता थे। पहला, इस बात के बावजूद कि मद्रास प्रेसीडेंसी में बाल श्रम पर स्पष्टतया प्रतिबंध लगाने वाले कानून की कमी थी, बाल श्रम की निंदा और ग्यारह साल से कम उम्र के बच्चों का बीड़ी कारखानों, कॉफी होटलों और थिएटरों में काम करना 'मानवता के सभी सिद्धांतों के खिलाफ' माना गया।[98] पार्षदों द्वारा गरीब माता-पिता की तात्कालिक ज़रूरतों को उद्घाटित करने के लिए वैतनिक कार्य में लगे बच्चों की भागीदारी को देखा गया, क्योंकि बच्चों को 'भावी वयस्कों के रूप में एक दीर्घकालिक निवेश के बतौर देखे जाने की बजाय समूह की आय में तात्कालिक अंशदाता के रूप में ही देखा जाता था'।[99] ठीक इसी समय परिवार के प्राधिकार के प्रति व्यापक समर्थन, ज़िन्दा रहने के लिए बच्चों की मज़दूरी पर गरीब परिवारों की निर्भरता के प्रति सहानुभूति और अनिवार्य शिक्षा के नारे के बावजूद किसी भी तरह के हस्तक्षेप को लेकर अनिच्छा अधिक थी।[100]

निष्कर्ष

इससे मद्रास में अनिवार्य शिक्षा की शुरुआत को लेकर कई निष्कर्ष निकलते हैं। 1919 के सुधारों की संवैधानिक सीमाओं के दायरे में, जो भारतीय उस समय पदाधिकारी स्तर पर और राज्य विधान सभा एवं नगर परिषदों में थे, वे सामाजिक और शैक्षिक बदलाव की प्रक्रिया शुरू करने की दिशा में उन्हें मिली नयी शक्तियों का उपयोग करने के लिए तैयार थे। इसका मतलब था कि असल में नहीं, तो एक नारे के रूप में ही सही, राज्य के निवेश के रूप में बच्चे पर ध्यान देने के विचार का सीधा संबंध नगरपालिका और प्रांतीय सरकार में भारतीयों की भागीदारी से था, न कि स्वतंत्रता संघर्ष से या कि खुद स्वतंत्रता प्राप्ति और नए संविधान के बनने से। यह 1920 और 1930 का दौर था, जब राज्य और नागरिक समाज के विमर्शों में बच्चे को स्कूल में और एक शिक्षार्थी के रूप में देखे जाने का विचार सामान्य बना, और बच्चों को भावी नागरिकों के रूप में देखा जाने लगा। अनिवार्यता ने राज्य के साथ बच्चों को एक नए रिश्ते में संस्थानीकृत किया, और इस नारे के ज़रिए, स्कूल बचपन की एक स्वाभाविक जगह और आधुनिक राज्य एवं बच्चों के बीच अंतर्क्रिया का एक वैध और प्राथमिक स्थल, दोनों बन गया। हालाँकि, स्कूल में एक आदर्श अथवा सार्वभौमिक बच्चे की कल्पना ने 'बच्चे' की प्रमुख छवि को एक पुरुष, हिंदू,

धनी, तमिल भाषी, शारीरिक रूप से सक्षम और उच्च जाति के रूप में रूढ़ करने में योगदान दिया। यह महज शैक्षिक व्यवस्था की 'असमानता' का प्रतिबिंब नहीं था। इसके बजाय, इस अंतर्निहित मानक परिभाषा से बाहर के बच्चों को वर्गीकृत किया गया और जेंडर, जाति, मातृभाषा और धर्म जैसी अन्य सामाजिक पहचानों को दर्शाते विभिन्न शैक्षिक समुदायों में अव्यक्त रूप से अन्यीकृत किया गया। इसके अलावा, मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का क्रियान्वयन भेदभाव हीन नहीं था, और इसमें प्रायः संपत्ति और वर्ग के मौजूदा पदानुक्रमों का पुनर्गठन शामिल था। इससे यह शिक्षा कुछ हद तक अवसरों के लिए शिक्षा की जगह गरीबों पर सामाजिक नियंत्रण की शिक्षा बन गई। प्रारंभिक शिक्षा को शुरू करने के लिहाज से इन योजनाओं की कई सीमाएँ थीं, लेकिन 1920 और 1930 के दशक के संदर्भ में इन प्रस्तावों की आमूलचूल परिवर्तनकारिता को चिन्हित करना महत्वपूर्ण है।

सन्दर्भ

1. सी.ए. बेली, (2012): 'आफ्टरवर्ड' इन माइकल डॉसन एंड ब्रायन हैचर ट्रांस-कोलोनियल मॉडर्निटीज़ इन साउथ एशिया, (लंदनः रुटलेज)
2. विस्तृत अध्ययन के लिए देखें, एलिनॉर न्यूबिगिन, ऑरनिट शानी और स्टीफन लेग. कॉन्स्टिट्यूशनलिज्म एंड द इवोल्यूशन ऑफ डेमोक्रेसी इन इंडिया. *कंपरेटिव स्टडीज़ ऑफ साउथ एशिया, अफ्रीका एंड द मिडिल ईस्ट.* 1 मई 2016; 36(1).
3. इंडिया ऑफिस रिकॉर्ड्स (आई.ओ.आर.), ब्रिटिश लाइब्रेरी, लंदन : एल/पीजे/6/1592, फाइल 2941.
4. (आई.ओ.आर.) : एल/पीजे/6/1592, फाइल 2941. सेलेक्ट कमेटी 21/7/1920
5. (आई.ओ.आर.) : एल/पीजे/6/1592, फाइल 2941. सेलेक्ट कमेटी 21/7/1920
6. तमिलनाडु स्टेट आर्काइव्स लाइब्रेरी (टी.एन.एस.ए.एल) : मद्रास लेजिस्लेटिव असेंबली (एमएलए) डिबेट्स 15/11/1921 पृ.-1387
7. तमिलनाडु स्टेट आर्काइव्स लाइब्रेरी (टी.एन.एस.ए.एल.) : जीओ1951 एलई 8/6/1925
8. मद्रास कार्पोरेशन आर्काइव्स (एम.सी.ए.) : प्रोसीडिंग्स 4/6/1943 पृ.-4, टी.एन.एस.ए. : जीओ1437 लॉ एंड एजुकेशन (एलई) 10/10/1942
9. टी.एन.एस.ए. : जीओ2268 एलई 9/12/1926
10. एम.सी.ए. : प्रोसीडिंग्स 25/11/1941, पृ.-9
11. एम.सी.ए. : प्रोसीडिंग्स 31/5/1932, पृ.-10. गोखले (1866-1915) कांग्रेस के नरम दल के नेता थे, जो 1911 में अखिल भारतीय स्तर पर अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा की शुरुआत हेतु की गई अपनी कोशिशों के लिए प्रसिद्ध हुए।

12. टी.एन.एस.ए. : जीओ951 एलई 8/6/1925
13. टी.एन.एस.ए. : जीओ951 एलई 8/6/1925 पृ. 3
14. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 28/3/1924 पृ. 477, 482, शॉर्ट प्रोसीडिंग्स 28/3/1924 पृ.143
15. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 28/3/1924 पृ. 477
16. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 28/3/1924 पृ. 492-4
17. राव 'कंपल्सरी एजुकेशन' इन राव, परिमल वी (संपा.) न्यू पर्सपेक्टिव्स इन द हिस्ट्री ऑफ इंडियन एजुकेशन (न्यू दिल्लीरू ओरियंट ब्लैकस्वान, 2014) पृ.175
18. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 20/5/1930
19. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 28/3/1924 पृ. 488, 491, 495
20. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 28/3/1924 पृ. 476, 488
21. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 28/3/1924 पृ. 482, 485; 17/2/1931 पृ.25; 3/3/1931 पृ.27.
22. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 28/3/1924 पृ. 490, 485. देखें, बी. कोहेन एंड एस. गांगुली 'इंट्रोदक्शन : रीजन्स एंड रीजनलिज़ूम इन इंडिया' इंडिया रिव्यू 13, 4 (2014)
23. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 28/3/1924 पृ. 499
24. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 18/3/1935 पृ. 19, 20
25. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 28/3/1924 पृ. 484
26. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 28/3/1924 पृ. 490, 485
27. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 28/3/1924 पृ. 477
28. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 27/9/1938 पृ. 23
29. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 19/11/1935 पृ. 60
30. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 30/3/1938 पृ. 6
31. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 1/12/1936 पृ. 36
32. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 1/12/1936 पृ. 37
33. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 7/7/1937 पृ. 24, 32
34. एम. सिन्हा, (2000): 'रीफैशनिंग मदर इंडिया : फेमिनिज़्म एंड नेशनलिज़्म इन लेट-कोलोनियल इंडिया.' फेमिनिस्ट स्टडीज़ 26, नं.3: 623-644
35. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 7/7/1937 पृ.27-28
36. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 7/7/1937 पृ.26
37. आई.ओ.आर.: एल/पीजे/6/1592, फ़ाइल 2941. मद्रास प्रारम्भिक शिक्षा अधिनियम 1920, अध्याय 1, खंड xiii.

38. टी.एन.एस.ए.: जीओ1951 एलई 8/6/1925
39. टिमोथी, अल्बोर्न *"एज़ एंड एम्पायर इन द इंडियन सेंसस, 1871-1931". जर्नल ऑफ इंटरडिस्प्लिनरी हिस्ट्री,* xxx:i (समर 1999) पृ.61-89
40. टी.एन.एस.ए.: जीओ1193 एलई 7/10/1922 मेमो 8/7/1922
41. टी.एन.एस.ए.: जीओ1193 एलई 7/10/1922
42. नेशनल लाइब्रेरी ऑफ स्कॉटलैंड (एन.एल.एस.): आइपी/25/पीजे.3 डीपीआइ 1919-20
43. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 1/4/1931; एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 7/9/1931 पृ.38, 18/11/1939 पृ.15-18, एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 7/9/1931 पृ.39
44. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 1/12/1931 पृ.33-35, 4/12/1934 पृ.47, 8/10/1935 पृ.47, 54, 31/8/1937 पृ. 55-6. द्रविड़ राष्ट्रवाद और भाषायी राजनीति की व्यापक चर्चा के लिए देखें, एस. रामास्वामी, *पैशन्स ऑफ द टंग : लैंग्वेज डेवेलपमेंट इन तमिल इंडिया, 1891-1970* (बर्कले : सी.यू.पी., 1997); ए.आर. वेंकटाचलपति, *इन दोज डेज देयर वाज नो कॉफी : राइटिंग्स इन कल्चरल हिस्ट्री* (नई दिल्ली: योदा प्रेस, 2006) पृ.153.
45. संजय सेठ, (2007): *सब्जेक्ट लेसन्स : द वेस्टर्न एजुकेशन ऑफ कोलोनियल इंडिया.* (ड्यूक यूनिवर्सिटी प्रेस)
46. केनेथ, मैकफेरसन, (2010): 'हाऊ बेस्ट डू वी सरवाइव?' ए मॉडर्न पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ द तमिल मुस्लिम्स, (लंदन : रुट्लेज़)
47. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 16/4/1929, 1/4/1931 पृ.46-49, 12/2/1932 पृ.26-29
48. एन.एल.एस.: आइपी/25/पीजे.3 डीपीआइ क्विनकेनियम 1916-17 से 1921-22 पृ.35, 66. जीओ329 होम (एजुकेशन) 17/03/1919, जीओ886 होम (एजुकेशन) 07/08/1920, जीओ28 एलइ 06/01/1922 में उल्लेखित
49. एन.एल.एस.: आइपी/25/पीजे.3 डी.पी.आई. रिपोर्ट्स, टी.एन.एस.ए.: जीओ 329 होम (एजुकेशन) 17/03/1919, जीओ 886 होम (एजुकेशन) 07/08/1920, जीओ 28 एलई 06/01/1922
50. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 16/4/1928
51. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 13/10/1924 पृ.235, 8/12/1924 पृ.61, 13/11/1931, 14/5/1925 पृ.184, 30/3/1938 पृ.18, 18/11/1939 पृ.39
52. शारदा बालगोपालन, (2014), *इनहैबिटिंग चाइल्डहुड : चिल्ड्रेन, लेबर एंड स्कूलिंग इन पोस्ट-कोलोनियल इंडिया,* (बसिंगस्टोक : पालग्रेव मैकमिलन)
53. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 13/11/1931
54. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 14/5/1925 पृ.184, 30/3/1938 पृ.18

55. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 25/10/1938 पृ.40
56. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 31/3/1937 पृ.113
57. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 28/3/1939 पृ.35
58. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 25/10/1938 पृ.38
59. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 25/2/1931. व्यापक चर्चा के लिए देखें, सी. एलिस. '''इफ़ यू कैन नॉट फ़ीड द बॉडी ऑफ ए चाइल्ड, यू कैन नॉट फ़ीड द ब्रेन' : एजुकेशन एंड न्यूट्रिशन इन लेट कोलोनियल मद्रास.'' *साउथ एशिया : जर्नल ऑफ साउथ एशियन स्टडीज़* 44, नं.1 (2021): 135-151.
60. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 1924 पृ.488
61. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 14/5/1925 पृ.187, 8/12/1942 पृ.16-19
62. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 23/8/1938 पृ.37, 14/11/1939 पृ.46, 18/11/1939 पृ.19
63. परिमल वी. राव., (2013), 'प्रोमिस्क्युअस क्राउड ऑफ इंग्लिश स्मार्टरर्स' : द 'पुअर' इन द कोलोनियल एंड नेशनलिस्ट डिस्कोर्स ऑन एजुकेशन इन इंडिया, 1835-1912' *कंटेम्प्ररी एजुकेशन डायलॉग,* 10, 2 पृ. 223-248.
64. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 18/2/1932 पृ.2. पर्सनल एक्सपीरियंस ऑफ दिस इज रिकाउंटेड बाइ के.ए. गुणशेखरन, द *स्केयर,* (हैदराबाद, 2009)
65. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 9/12/1936, 19/1/1937, 31/3/1937 पृ.100-1, 4/10/1938 पृ.44
66. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 29/11/1939 पृ.7
67. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 29/11/1939 पृ.4, 18/11/1939 पृ.31, पृ.8, 29/11/1939 पृ. 10-11
68. आई.ओ.आर.: एल./पी.जे./6/1592, फाइल 2941. डिबेट्स 28/9/1920 पृ.74
69. आई.ओ.आर.: एल./पी.जे/6/1592, फाइल 2941. सेलेक्ट कमेटी 21/7/1920
70. एन.एल.एस.: आई.पी./25/पी.जे.3 डी.पी.आई. 1931-32, क्विनक्वेनियम 1927-28 टू 1931-32
71. आई.ओ.आर.: एल./पी.जे/6/1592, फाइल 2941. सेलेक्ट कमेटी 21/7/1920
72. आई.ओ.आर.: एल./पी.जे/6/1592, फाइल 2941. डिबेट्स एमएलए 28/9/1920 पृ.24
73. एन.एल.एस.: आई.पी./25/पी.जे.3 डी.पी.आई. 1930-31 पृ.23
74. टी.एन.एस.ए.: जी.ओ.951 एल.ई. 8/6/1925. डिवीजन्स आर लोकल अथॉरिटी वार्ड्स/एरियाज़

75. टी.एन.एस.ए.: जी.ओ.951 एल.ई. 8/6/1925. लेटर 15/4/1925
76. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 3/2/1925
77. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 20/1/1925 पृ.13; टी.एन.एस.ए.: जी.ओ.951 एल.ई. 8/6/1925
78. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 20/1/1925 पृ.14
79. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 14/5/1925 पृ.183-187
80. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 16/4/1926 पृ. 20
81. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 23/9/1930
82. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 28/3/1933 पृ. 27
83. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 24/8/1926 पृ. 48; 13/10/1924 पृ. 336; 7/9/1926 पृ. 50
84. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 24/7/1931 पृ. 121, 124, 130,
85. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 8/5/1926 पृ. 49
86. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 8/5/1926 पृ. 50- 53, 11/4/1927, 26/8/1927
87. टी.एन.एस.ए.: एम.एल.ए. डिबेट्स 30/3/1931 पृ. 119, 126
88. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 14/5/1925 पृ. 183-44
89. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 22/7/1925 पृ. 352
90. टी.एन.एस.ए.: जी.ओ. 2268 एल.ई. 9/12/1926 स्कीम फॉर द एक्सटेंशन ऑफ फ्री एंड कंपल्सरी एजुकेशन, पृ.4
91. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 25/11/1925 पृ.352
92. टी.एन.एस.ए.:जी.ओ.1951एल.ई.8/6/1925;जी.ओ.2268एल.ई.9/12/1926,एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 22/7/1925
93. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स डेट मिसिंग 1929
94. टी.एन.एस.ए.: जी.ओ. 1951 एल.ई. 8/6/1925
95. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 1939 पृ.35
96. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 25/2/1931 पृ.3
97. टी.एन.एस.ए.: जी.ओ. 2268 एल.ई. 9/12/1926
98. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 13/11/1931 पृ4, बी.एल.: जे.एम. सेन हिस्ट्री ऑफ एलीमेंट्री एजुकेशन इन इंडिया, (कलकत्ता : बुक कंपनी, 1933)
99. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 28/3/1933 पृ.29
100. एम.सी.ए.: प्रोसीडिंग्स 13/11/1931, 1/12/1931 पृ.25